धार्मिक चेतना

धर्म दर्शन का मुख्य उद्देश्य धार्मिक चेतना की उत्पत्ति एवं स्वरूप की व्याख्या प्रस्तुत करना है| जब हम इस समस्या की ओर दृष्टिपात करते हैं तो हम पाते हैं कि धार्मिक चेतना मनुष्य मन की प्रक्रिया है जो उसे धर्म की ओर प्रेरित करता है| धार्मिक चेतना का अर्थ है- धर्म की चेतना| अन्य चेतना ओं की भांति धार्मिक चेतना भी मानव मन से संबंधित होती है धार्मिक चेतना की व्याख्या के लिए हमें मानव मन की व्याख्या करना आवश्यक है| अर्थात हमें उन तथ्यों की खोज करनी चाहिए जिनके आधार पर धार्मिक चेतना की उत्पत्ति तथा विकास होते है|

मानव में तीन प्रकार की प्रवृत्तियां वर्तमान रहती है- ज्ञानात्मक, संवेगात्मक और क्रियात्मक| प्रोफेसर जे एच लयुवा निभाना चेतना की व्याख्या करते हुए कहा है कि उनमें तीनों का सामंजस्य होता है जो हमारी चेतना में सदा ही वर्तमान रहता है, जिसे हम एक तथ्य के रूप में समझ सकते हैं| भी हमारी चेतना के आवश्यक सार पदार्थ है| हमारी चेतना न केवल ज्ञानात्मक, संवेगात्मक और क्रियात्मक है, बल्कि इन तीनों की एकता है| इसलिए हम कह सकते हैं कि हमारी चेतना में इन तीनों तत्वों का समावेश है| धार्मिक जितना भी हमारी संपूर्ण मानसिक चेतना है अतः यह कहा जा सकता है कि धार्मिक चेतना के लिए इन तीनों तत्वों का होना अनिवार्य है|

धार्मिक चेतना की उत्पत्ति

धार्मिक चेतना की उत्पत्ति मानव की आध्यात्मिक असंतोष से होती है| मानव एक ऐसी सत्ता की कल्पना करता है, जोक्स से परे है, साथ ही उससे महान भी| इस प्रकार की भावना का उदय मानव की ससीमता के कारण होता है| ऐसी अवस्था में वह अपने को असहाय अनुभव करता है| एक प्रकार से अदृश्य सत्ता से मदद और दया की आशा करता है और इस प्रकार उसमें धार्मिक चेतना का प्रादुर्भाव होता है| अतः यह कहा जा सकता है कि धार्मिक चेतना की उत्पत्ति मानव की ससीमता का परिणाम है|

धार्मिक चेतना का स्वरूप

चेतना का अर्थ ज्ञान है, धार्मिक चेतना का अर्थ धार्मिक नियमों का ज्ञान है| साधारण तो चेतना ज्ञान का पर्यायवाची शब्द है परंतु धर्म दर्शन में चेतना शब्द का प्रयोग एक पारिभाषिक शब्द के रूप में किया जाता है| इस अर्थ में धार्मिक चेतना, ज्ञान, भावना और संकल्प या इच्छा तीनों का समन्वय है| धार्मिक चेतना में तीनों तत्व विद्यमान है| इसे केवल ज्ञान अरूप मानना इसका संकुचित अर्थ ग्रहण करना है| धर्म का बोध ज्ञान रूप अवश्य है, क्योंकि बुद्धि या ज्ञान से ही हम धर्म की मान्यताओं को जानते हैं परंतु धार्मिक सिद्धांतों के बोध या ज्ञान के पश्चात हमें धर्म के प्रति श्रद्धा या आस्था होती है| यह श्रद्धा या आस्था भावना रूप है| धार्मिक भावना के पश्चात हम धर्म का आचरण करते हैं| अतः धार्मिक चेतना में ज्ञान, आस्था और संकल्प तीनों सम्मिलित हैं| अतः यह स्पष्ट है कि धार्मिक चेतना में तीनों तत्व विद्यमान है| परंतु एक आवश्यक प्रश्न यह है कि इन तीनों में कौन सा तत्व धार्मिक चेतना में प्रबल है? प्राय: विद्वान मानते हैं कि धर्म में तीन तत्व सम्मिलित हैं परंतु इनमें प्रधानता या प्रबलता एक समान नहीं है| फिर भी यह धार्मिक चेतना के अनिवार्य अंग है| धार्मिक चेतना ज्ञान, भावना और क्रिया का समन्वित रूप है| धार्मिक चेतना जान प्रधान है, भावना प्रधान है या क्रिया प्रधान है? इस विषय पर विद्वानों में विवाद है|

धार्मिक चेतना में ज्ञान की प्रधानता है

विवेक को धर्म का मूल आधार मानने वालों में हीगेल और मैक्समूलर का नाम उल्लेखनीय है| मैक्समूलर के अनुसार अनंत सत्ता का ज्ञान ही धर्म है| इसी प्रकार अधिकारियों के अनुसार धार्मिक चेतना का एकमात्र आधार हमारा ज्ञान है| इस विचार के समर्थकों के अनुसार मानव धार्मिक होता है इसका कारण यह है कि उसके पास विवेक है| यदि पशुओं में भी विवेक होता तो भी भी धार्मिक होते| पर उनके अंदर ज्ञान का अभाव है| इसके अतिरिक्त धार्मिक चेतना को सार्वभौम बनाने के लिए विवेक को स्वीकार करना ही पड़ेगा, क्योंकि भावना व्यक्तिगत होती है, परंतु विवेक सार्वभौम है और इसे आधार बनाकर धार्मिक चेतना भी सार्वभौम हो सकती है| बुद्धिवादी हेगेल तथा उसकी संप्रदाय के दार्शनिक मानते हैं कि धार्मिक चेतना का मूल आधार ज्ञान है| बुद्धिवादी दार्शनिक बुद्धि को ही ज्ञान का स्रोत मानते हैं| इसी आधार पर वे धार्मिक चेतना या ज्ञान को भी बुद्धि प्रसूत स्वीकार करते हैं| उनके अनुसार मानव में ज्ञान ही प्रधान है, अतः इसे ही धार्मिक चेतना का आधार स्वीकार करना उचित है| विवेक प्रधान होने के कारण ही मनुष्य धर्म का आचरण करता है| यदि मनुष्य में ज्ञान ना हो तो वह धर्म की ओर अग्रसर नहीं हो सकता| इस मान्यता को स्वीकार करने वाले कुछ तर्क भी देते हैं-

1• धर्म के मूल में आध्यात्मिक असंतोष है| मनुष्य अपूर्ण से पूर्ण की ओर, सात से अनंत की ओर, अल्पज्ञ से सर्वज्ञ की ओर जाना चाहता है| वह अपनी अपूर्णता और अल्पज्ञता की सीमा पार करना चाहता है| इसलिए वह अपने आप में एक प्रकार के आध्यात्मिक असंतोष का अनुभव करता है| अपने को दी नहीं समझने के कारण व धर्म की ओर झुकता है| धार्मिक चेतना ज्ञान रूप है|

2• धर्म का सार असीम और अनंत का बोध है| प्रत्येक धर्म में एक असीम और अनंत परा शक्ति या परमात्मा का बोध है| यह खुद ही हमें धार्मिक बनाता है| परमात्मा पाराशक्ति का ज्ञान होते ही हम परमात्मा को अपना लक्ष्य मानकर उस की ओर अग्रसर होते हैं| धार्मिक चेतना विज्ञान की प्रधानता है|

3• ज्ञान के कारण ही धर्म सुदृढ़ और विश्वव्यापी होता है| धार्मिक अनुभूति व्यक्तिगत होती है| इसी कारण धर्म में संकीर्णता आती है परंतु जब यह अनुभूतियां विवेक युक्त हो जाती हैं तो सार्वजनिक हो जाती है| इससे धर्म का महत्व बढ़ता है| बीबीसी धर्म के चित्र से संकीर्णता को दूर करता है| धार्मिक चेतना का आधार ज्ञान है|

परंतु केवल ज्ञान को धर्म का आधार स्वीकार करने पर अनेक कठिनाइयां देख पड़ती हैं| सर्वप्रथम यदि इस बात को स्वीकार किया जाए तो यह संदिग्ध रूप से मानना पड़ेगा कि अज्ञानी धार्मिक नहीं हो सकता| लेकिन यह गलत है| हम पाते हैं कि अज्ञानी व्यक्ति धार्मिक होते हैं| जियेकॉक के अनुसार धर्म यदि केवल बौद्धिक वस्तु हो जाए , जिसमें अनुभूतियां तथा संवेग का कोई स्थान ना हो तो वह धर्म न रहकर केवल दर्शनशास्त्र रह जाएगा|

धार्मिक चेतना का संवेगात्मक पहलू

कुछ विद्वानों के अनुसार धार्मिक चेतना का संबंध केवल हमारे संवेगात्मक पहलू से ही है| उनके अनुसार धर्म का बुद्धि के साथ कोई संबंध नहीं| इस विचार के मानने वालों में मुख्यतः सीलीयरमेकर और मैक टैगआर्ट के नाम उल्लेखनीय हैं| इन विचारकों के अनुसार धर्म बौद्धिक नहीं हो सकता| इसका कारण यह है कि बुद्धि नियम, तर्क, प्रस्तावना तथा सिद्धांतों के साथ उलझा है| परंतु धर्म एक अनुभूति है जो बुद्धि से भिन्न है| धर्म कोई युक्ति या तर्क का विषय नहीं, यह तो विश्वास पर आधारित है| यहां मानव अपनी आत्मा का संबंध उसके सत्ता के साथ स्थापित करता है, जिसे ईश्वर कहते हैं| अतः धर्म का बुद्धि के साथ कोई संबंध नहीं इसके साथ ही उन विचारकों के अनुसार धर्म का संबंध व्यावहारिक क्रियाओं के साथ भी नहीं है| इस विचार के समर्थकों के अनुसार मानव धार्मिक इसलिए नहीं होता क्योंकि वह विवेकी है और ना ही वह इस कारण धार्मिक है क्योंकि नैतिक नियमों के अनुसार कर्म करता है| बल्कि वह धार्मिक होता है क्योंकि वह अपने ह्रदय के एक कोने में ईश्वर का अनुभव करता है| वह यह अनुभव करता है कि वह ईश्वर के ऊपर आश्रित है| अतः धर्म मानव की संवेगात्मक पहलू पर आश्रित है| प्रो केयरड के अनुसार धार्मिक चेतना आत्मा और ईश्वर में तादात्म्य स्थापित करता है| परंतु कार्य के लिए ना तो विवेक और क्रिया ही सहायक हो सकती है| केवल अनुभूतियों और संपर्कों के आधार पर ही आत्मा और ईश्वर में एकात्म्य स्थापित किया जा सकता है| इनके अनुसार अगर धार्मिक चेतना एक ऐसी चेतना है जो सबके लिए संभव हो सकती है तो हमें इस बात को स्वीकार करना पड़ेगा किसका स्थान हमारी अनुभूतियों में ही निहित है|

कुछ लोगों ने है धर्म की व्याख्या करते हुए कहा है कि धर्म मानव ह्रदय को ईश्वर में मिलाता है और इससे यह स्पष्ट है कि धर्म का स्रोत हमारी अपनी अनुभूतियां हैं, ज्ञान नहीं| ज्ञान सदा ही आंतरिक तथा बाह्य वस्तु के भेद को निहित करता है| ज्ञान में ज्ञाता और विषय का भेद सदा ही वर्तमान रहता है| पर अनुभूति मे बाह्य वस्तु की अलग कोई सत्ता नहीं रह जाती, यह स्वयं आंतरिक हो जाता है|

अर्थात हम पाते हैं कि कुछ विद्वानों के अनुसार धार्मिक चेतना का आधार हमारी अनुभूतियां हैं| पर प्रश्न यह उठता है कि यह धार्मिक अनुभूतियां कैसी हैं? अर्थात हम किस अनुभूति को धार्मिक अनुभूति कर सकते हैं| लुकरिटस ने धार्मिक चेतना को अंधविश्वास कहा है और इसलिए इसके अनुसार भय की अनुभूति ही धार्मिक अनुभूति है| यू ने भी कहा है कि भय की भावना ही धार्मिक चेतना है| इसी प्रकार सीलियमेकर में करने कहा है की धार्मिक चेतना पूर्ण निर्भरता की भावना है| ऑटो के अनुसार धार्मिक चेतना न्यूमीनस की अनुभूति है| इस प्रकार हम पाते हैं कि विद्वानों ने धार्मिक भावना कैसी होनी चाहिए इसके संबंध में विभिन्न प्रकार अपना विचार प्रकट की है| धार्मिक भावना एक जटिल प्रवृत्ति है, जिसमें हम भय, श्रद्धा, प्रेम, आशा, निर्भरता, शांति, सुख तथा आनंद आदि का समावेश पाते हैं|

धार्मिक चेतना का मूल आधार भावना ही है| इसे साबित करने के लिए विद्वानों ने अनेक तर्क भी दिए हैं

1• साधारण व्यक्ति भाई की भावना से ही धार्मिक बनता है| साधारण व्यक्ति ज्ञान की उत्कर्ष की कारण धार्मिक नहीं बनता| वह धार्मिक क्रियाओं के अनुष्ठान से धार्मिक नहीं होता परंतु धार्मिक भावना के कारण धार्मिक बनता है|

2• समाज में अज्ञानी तथा मूर्ख अधिक हैं परंतु वे उच्च कोटि के धार्मिक हैं| उनमें आस्था अवश्य है, परंतु ज्ञान का अभाव है| आस्था का संबंध भावना से है| भावना से ही उन्हें प्रेरणा मिलती है|

3• धार्मिक चेतना भावना मूलक़ मानने वाले ज्ञान का विरोध करते हैं| उनका कहना है कि यदि धर्म में ज्ञान की प्रधानता होती तो केवल विद्वान ही धार्मिक होते| वस्तुतः विद्वान धार्मिक कम होता है| यदि विद्वान धर्म की ओर आकृष्ट भी होता है तो भावनाओं के कारण ही|

4• धार्मिक चेतना को भावनामूलक़ मानने वाले धर्म को क्रियामूलक भी नहीं मानते| उनका कहना है कि धार्मिक क्रियाओं, पूजा पाठ, यज्ञ हवन, आदि में अधिक धन की आवश्यकता होती है| ऐसी स्थिति में केवल धनवान ही धार्मिक होगा| वस्तुतः निर्धन अधिक धार्मिक होता है| इसलिए धार्मिक चेतना भावना प्रधान है|

परंतु यह कहना कि धार्मिक चेतना केवल भावनात्मक चेतना है, पूर्णता गलत होगा| प्रो केयरड मैं इस विचार की आलोचना करते हुए कहा है कि को केवल भावना में निहित कर देना स्वयं आत्म- विरोधी है| यदि हम धर्म को केवल केवल अनुभूति के रूप में ही मान ले तो स्वयं भी इस अनुभूति को धर्म के रूप में नहीं पहचान सकेंगे|

इसके साथ ही यह स्वीकार करना कि किसी वस्तु की हमें अनुभूति मात्र होती है- गलत है और असंभव भी| यह हमें इस बात को बताने में असफल रहता है कि हमारे बाहर क्या है तथा हमें अपने से बाहर ले जाने में भी असमर्थ होता है| किसी वस्तु के ज्ञान के अभाव में हममें उसके प्रति भय, प्रेम आदि भावनाओं का विकास ही नहीं हो सकता है| कहा जा सकता है कि धार्मिक अनुभूतियां सार्वभौम सत्य पर निर्भर हैं| अतः केवल अनुभूतियां ही धार्मिक चेतना का आधार नहीं बन सकती हैं|

धार्मिक चेतना का क्रियात्मक पक्ष

कुछ विद्वान धार्मिक चेतना को क्रियापरक़ यह संकल्पमूलक स्वीकार करते हैं| उनका कहना है कि यज्ञ, दान, हवन, परोपकार आदि के माध्यम से ही धर्म की अभिव्यक्ति होती है| धार्मिक कर्म ही धर्म में प्रधान तत्व है| कर्म आंतरिक संकल्प की बाह्य अभिव्यक्ति है| धार्मिक क्रिया संकल्पमूलक होती है| धार्मिक चेतना को संकल्पमूलक ही माना जाता है|

संसार के विभिन्न धर्मों को देखने से पता चलता है कि धर्म का सार तो धार्मिक कर्म है| हम मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर , गुरुद्वारा आदि पूजन स्थलों में विभिन्न प्रकार के धार्मिक मंत्र, बलि पूजा, पाठ, दान दक्षिणा आदि विभिन्न कार्य करते हैं| इन धार्मिक कर्मों के माध्यम से ही हमारे धर्म का प्रचार और प्रसार होता है| कर्म को भी धार्मिक चेतना का सार मान लेना चाहिए| हम अपनी धार्मिक चेतना को विधि और निषेध रूप कर्म में अभिव्यक्त करते हैं| इस सिद्धांत को मानने वाले कुछ इस प्रकार तर्क देते हैं-

1• धार्मिक व्यक्ति वही है जो धार्मिक कर्मों को करता है| यज्ञ, बलि, दान आदि धार्मिक कार्य धर्म के इतिहास में बहुत पहले से दिखाई पड़ते हैं| इससे स्पष्ट होता है कि धार्मिक चेतना में क्रिया की प्रधानता है|

2• प्राय: धर्म में देखा जाता है कि व्यक्ति असीम और अनंत ईश्वर से संबंध स्थापित करना चाहता है| इसके लिए मुझे कुछ क्रिया करनी पड़ती है जिसके द्वारा अपने देवता को प्रसन्न कर अपना संबंध उसे जोड़ लेता है| उदाहरण के लिए क्रिया के माध्यम से मानव असीम परमात्मा से संबंध जोड़ते हैं तथा उनकी कृपा से अपनी दुर्बलता पर विजय प्राप्त करते हैं| साथ ही साथ मनोवांछित फल भी प्राप्त करते हैं| इस प्रकार क्रियाएं असीम और ससीम में संबंध का माध्यम है|

3• धार्मिक क्रियाओं के द्वारा ही धर्म सुदृढ़ होता है| जब मनुष्य धार्मिक क्रियाओं को करता है तो धर्म में उसकी अभिरुचि बढ़ती है| शारीरिक और मानसिक क्रियाओं के द्वारा हम अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते हैं|

4• पूजा पाठ, कर्मकांड आदि से हम धार्मिक आदर्शों की प्राप्ति करते हैं| आदर्श या मूल्य तो अलौकिक है, परंतु लौकिक कर्मकांड से ही प्राप्त होते हैं| कर्मकांड ही आदर्श साधन है|

वर्तमान समय में कुछ दार्शनिकों ने धर्म के क्रियात्मक पहलू पर बहुत अधिक जोर दिया है| सर्वप्रथम कांट ने अपने क्रिटीक आफ प्योर रीजन में इस बात का जोरदार शब्दों में समर्थन किया है| फिकटे ने इस बात को बहुत बढ़ावा दिया, इसके साथ ही होफडिंग तथा वर्तमान मनोवैज्ञानिक बूंट ने भी इसकी महता स्वीकार की है| धर्म में क्रिया का होना आवश्यक है| धर्म का आवश्यक स्वरूप आत्मा का ईश्वर के चरणों में समर्पण है|

परंतु इसका यह अर्थ नहीं की धर्म में ज्ञान और अनुभूति का पूर्ण अभाव है| बल्कि धर्म में ज्ञान और अनुभूति पहले से ही वर्तमान रहते हैं| धर्म को स्वस्थ रूप देने के लिए यह आवश्यक है कि हम अपनी बुद्धि द्वारा प्राप्त ईश्वर के ज्ञान एवं अनुभूतियों को कार्य रूप में प्रकट करें| धर्म का क्रियात्मक पहलू इस बात का प्रमाण है कि धर्म एक प्रकार की क्रिया है, एक प्रकार का व्यवहार है| धर्म हमारे आंतरिक जीवन की एक विशेष अनुभूति है अतः इसका भी बाह्य प्रदर्शन हमारी क्रियाओं द्वारा आवश्यक है| जीवन एक रहस्यआत्मक शक्ति के प्रति प्रेम, श्रद्धा, भय आदि की भावना मात्र को ही धर्म नहीं कहा जा सकता| इससे धर्म तभी कहा जा सकता है जब हम अपनी इन अनुभूतियों को बाह्य रूप देते हैं|

इस प्रकार यह स्पष्ट जान पड़ता है कि धार्मिक चेतना में हम ज्ञानात्मक, संवेगात्मक तथा क्रियात्मक पहलुओं को एक सामंजस्य के रूप में पाते हैं| धार्मिक चेतना हमारे मन की किसी एक अंग में नहीं है बल्कि इस चेतना में हमारे मन के तीनों पहलुओं का आवश्यक हाथ है|

धर्म का ज्ञानात्मक पहलू हमारे अंदर एक ईश्वर के संबंध में संदिग्ध विश्वास को जन्म देता है| हम एक ऐसी सत्ता में विश्वास करते हैं, जो सर्वशक्तिमान है| धर्म का संवेगात्मक पहलू हममें प्रेम, श्रद्धा, भक्ति, भय आदि अनेक अनुभूतियों का प्रादुर्भाव कराता है| क्रियात्मक पहलू धर्म के व्यावहारिकता की ओर हमें प्रेरित करता है| अतः हम कह सकते हैं कि धार्मिक चेतना हमारी संपूर्ण मस्तिष्क की चेतना है|